ISSN: 0971-8478 मार्च 2023 ₹ 22

आजादी का अमृत महोत्सव

आजकल

1945 से निरंतर प्रकाशित

साहित्य और संस्कृति का मासिक

आधुनिकता में मौलिक स्त्री

● लेख

समथिंग ओरिजिनल
क़ुर्रतुल ऐन हैदर को याद करते हुए

रेखा सेठी

क़ुर्रतुल ऐन हैदर भारतीय साहित्य की बड़ी लेखिका हैं। यह लेख अपनी अग्रजा के रूप में उनकी स्मृति को समर्पित है। वे 1941 से 1945 तक इंद्रप्रस्थ महिला महाविद्यालय की छात्रा रहीं। मैं भी 1984-89 तक यहाँ पढ़ी और अब यहीं अध्यापन कर रही हूँ। साहित्य के अध्ययन-अध्यापन से जुड़े होने के कारण लम्बे समय से मेरे मन में यह जिज्ञासा रही कि जिन लेखकों की विरासत भारतीय विरासत की थाती है, वे जब छात्रों की उम्र के रहे होंगे तब क्या सोचते थे? अपने आस-पास को समझने की क्या दृष्टि रही होगी? उनकी भाषा कैसी थी, आदि। पिछले दिनों कॉलेज के संग्रहालय में पुरानी पत्रिकाएँ देखते हुए मुझे उनका एक लेख मिला। इंद्रप्रस्थ कॉलेज एकमात्र ऐसा कॉलेज है जिसने अपनी विरासत को संग्रहालय के रूप में सहेज कर रखा है और उसे एक लर्निंग रिसोर्स सेंटर की शक्ल दी जिससे ऐसे अध्ययन हो सकें जो हमें हमारा इतिहास समझने और उसका विश्लेषण करने में मदद करें। 1944 की कॉलेज पत्रिका 'प्रदीप' में क़ुर्रतुल ऐन हैदर का अंग्रेज़ी में लिखा एक लेख मिलता है जिसका शीर्षक है 'समथिंग ओरिजिनल' यानी 'कुछ मौलिक'। इस लेख के साथ उनका नाम है और यह सूचना भी कि वे थर्ड ईयर (तृतीय वर्ष) की छात्रा हैं। यह लेख कहानीनुमा है, दो मित्रों के बीच संवाद जिसमें कुछ मौलिक रचने या लिखने के लिए मज़मून-ए-आफ़रीन ढूँढ़ा जा रहा है। यह लेख एक तरह का व्यंग्य है। उन दिनों लेखन में प्रगतिशीलता का ज़ोर था लेकिन वहीं बहुत बार प्रगतिशीलता सिर्फ़ फ़ैशन बनकर रह जाती थी। इस कहानी में दो किरदार आपस में जो बातचीत करते हैं उसमें कहानी सुनाने वाली लेखिका का मित्र कहानी का जो आइडिया देता है, वह कहने को प्रगतिशील है लेकिन रूमानियत में उलझा हुआ है। कहानी उसी स्थिति पर एक तरह का व्यंग्य है। सम्भवतः यह उस समय की साहित्यिक विचारधारा पर भी एक तरह का व्यंग्य है जिसमें रोमानी ढर्रे पर पनपता स्त्री-पुरुष का प्रेम, हमारी साहित्यिक प्रगतिशीलता को रोमानी ढाँचे में बाँध रहा था। कॉलेज की पत्रिकाओं में छपने वाले ऐसे लेखों की ख़ास भूमिका होती थी। आज के समय के फ़ेसबुक पोस्ट या ब्लॉग की तरह ये छोटी-छोटी टिप्पणियाँ मज़ाहिया अंदाज़ में लिखी जाती थीं और अपने साथियों के बीच लेखक को लोकप्रिय बनाती थीं। क़ुर्रतुल ऐन हैदर ने बहुत कम उम्र में लिखना शुरू कर दिया था और सन् 1945 तक उनका पहला कहानी-संग्रह 'शीशे का घर' प्रकाशित हो चुका था।

इसी पत्रिका में उनकी एक उर्दू कहानी भी मिलती है जिसका शीर्षक है 'रेल में'। उसके आरम्भ में ही यह भी दर्ज है कि इसका प्रसारण 15 सितम्बर, 1942 की शाम ऑल इंडिया रेडियो लखनऊ से हुआ। यह नहीं पता चल पाया कि इस कहानी का प्रकाशन कॉलेज पत्रिका के अतिरिक्त भी कहीं हुआ या नहीं? सम्भवतः नहीं क्योंकि उनके कहानी-संकलनों--शीशे के घर','सितारों से आगे','पतझड़ की आवाज़', 'रोशनी की रफ़्तार' में इस शीर्षक से कोई भी कहानी नहीं है। 'प्रदीप' पत्रिका में प्रकाशित यह कहानी ज़ाहिर करती है कि 15-16 साल की उम्र में क़ुर्रतुल ऐन हैदर लेखन और रेडियो में बराबर रूप से सक्रिय थीं। इस कहानी का केन्द्र-बिन्दु भी लखनऊ की पारम्परिक जीवन शैली जीने वाली पर्दानशीन नवाबज़ादियों तथा देश के अलग-अलग कॉलेजों में पढ़ने वाली आज़ाद-ख़याल लड़कियों के जीवन के अंतर को रेखांकित करना है।

1941-45 का समय पूरे देश में राजनैतिक सक्रियता का समय था। यह वह समय था जब गाँधीजी का 'भारत छोड़ो' आंदोलन परवान चढ़ रहा था। पूरे देश से युवक-युवतियाँ आगे बढ़कर उसमें भाग ले रहे थे। इंद्रप्रस्थ कॉलेज के सभी विद्यार्थियों में भी राजनैतिक चेतना की सरगर्मियाँ ज़ोर मार रही थीं। स्वतन्त्रता की अग्रदूत सुचेता कृपलानी सरीखी छात्राएँ इसी कॉलेज से निकली थीं। 1942 में इसी कॉलेज की छात्रा रूप सेठ ने लाहौर जेल की प्राचीर पर तिरंगा लहराया। उस समय की छात्राएँ बताती हैं कि किस तरह आए दिन लड़कियाँ गाँधीजी के आंदोलनों में भाग लेने के लिए कॉलेज की दीवारें फाँद-फाँद कर जुलूस और जलसों में शामिल होने के लिए निकल जाती थीं। चरख़ा चलाना, सूत कातना, खादी पहनना कॉलेज की छात्राओं का राष्ट्र धर्म बन गया था। 2005 में प्रकाशित मीना भार्गव तथा कल्याणी दत्ता ने अपनी पुस्तक 'Women, Education and Politics : The Women's Movement and Delhi's Indraprastha College' में इन सारी स्थितियों का ब्योरा प्रस्तुत किया है। 1942 में ही इंद्रप्रस्थ कॉलेज की छात्राओं द्वारा स्वाधीनता आंदोलन में बढ़-चढ़कर भाग लेने के कारण औपनिवेशिक सरकार ने छात्राओं के दमन के लिए छात्रावास को मिलने वाली गेहूँ की आपूर्ति में कटौती कर दी। इस सबसे उनका उत्साह कम नहीं हुआ। क़ुर्रतुल ऐन हैदर इतिहास के इसी मोड़ पर कॉलेज के छात्रावास में रह रही थीं।

यह समय स्त्री शिक्षा के क्षेत्र में परम्परा और आधुनिकता के द्वन्द्व का था। एक ओर आज़ादी का जुनून, दूसरी ओर लड़कियों की आज़ाद-ख़याली के अंतर्विरोध। पितृसत्तात्मक परिवारों से दूर शहर में कुछ लड़कियों ने अपनी आज़ादी को जीवन की रंगीनियों में पाने की कोशिश की। 'गुड गर्ल' बनाम 'बैड गर्ल' सिंड्रोम जो आज तक किसी-न-किसी

सम्पर्क : ई-मेल : reksethi@gmail.com

रूप में बना हुआ है, उस समय भी कॉलेजों के छात्रावासों में नैतिकता के ये सवाल और मूल्यगत टकराहटें लगातार चलती रहती थीं। 1985 में क़ुर्रतुल ऐन हैदर को अपने कहानी-संकलन 'पतझड़ की आवाज़' के लिए साहित्य अकादेमी पुरस्कार मिला। इसी नाम से उनकी कहानी में इस स्थिति का बेबाक वर्णन है। इस कहानी से दो-तीन हिस्से उद्धृत हैं—

"ये विश्व युद्ध के दिन थे या शायद युद्ध इसी साल ख़त्म हुआ था, मुझे ठीक से याद नहीं है। बहरहाल, दिल्ली पर बहार आई हुई थी। करोड़पति कारोबारियों और भारत सरकार के बड़े-बड़े अफ़सरों की लड़कियाँ हिन्दू-सिख-मुसलमान... लम्बी-लम्बी मोटरों में उड़ी-उड़ी फिरतीं। नित-नई पार्टियाँ, उत्सव, हंगामे—आज इंद्रप्रस्थ कॉलेज में ड्रामा है, कल मिरांडा हाउस में, परसों लेडी इरविन कॉलेज में संगीत सभा है। लेडी हार्डिंग और सेंट स्टीफ़ेंस कॉलेज, चेम्सफ़ोर्ड क्लब, रोशनआरा, इंपीरियल, जिमख़ाना—मतलब यह कि हर ओर अलिफ़-लैला के बाल बिखरे पड़े थे, हर स्थान पर नौजवान फ़ौजी अफ़सरों और सिविल सर्विस के अविवाहित पदाधिकारियों के ठट डोलते दिखाई देते। एक हंगामा था।"

एक ही कहानी में अर्थ की कई परतें हैं। स्त्री शिक्षा का माहौल अनेक जटिलताएँ समेटे हुए था। कॉलेज और वहाँ के छात्रावास कुलीन घरानों की लड़कियों के लिए थे। उन्हीं में से बहुत-सी लड़कियाँ और आगे पढ़ीं और ऊँचे-ऊँचे ओहदों पर पहुँच गईं। इस कहानी में भी ऐसी सफलताओं का ज़िक्र है। कुछ बड़े अफ़सरों की शरीक़-ए-हयात हो गईं। कुछ सामाजिक-राजनैतिक क्षेत्रों में सक्रिय रहीं लेकिन उन सबके वर्णन से सामाजिक रिपोर्टें बनती हैं। कहानी उन भीतरी सच्चाइयों को उजागर करने से बनती है जिन्हें विक्टोरियन नैतिकता और पारिवारिक मर्यादा के नाम पर कई पर्दों में छिपा कर रखा जाता है। क़ुर्रतुल ऐन हैदर इस कहानी में ऐसी महीन स्थितियों को बेपर्दा करती हैं—

"इन दिनों नई दिल्ली की एक-दो आवारा लड़कियों के क़िस्से बहुत मशहूर हो रहे थे और मैं सोच-सोचकर ही डरा करती थी। शरीफ़ ख़ानदानों की लड़कियाँ अपने माँ-बाप की आँखों में धूल झोंककर किस तरह लोगों के साथ रंगरेलियाँ मनाती हैं। हॉस्टल से प्रायः इस प्रकार की लड़कियों के सम्बन्ध में अटकलें लगाया करती। वे बहुत ही अजीब और रहस्यमयी हस्तियाँ मालूम होतीं। यद्यपि देखने में वे भी हमारी ही तरह की लड़कियाँ थीं—साड़ियाँ, सलवारें पहने ब्राकी सुन्दर और पढ़ी-लिखी।

"लोग बदनाम करते हैं जी", सईदा दिमाग़ पर बड़ा ज़ोर डालकर कहती, "अब ऐसा भी क्या है?"

"वास्तव में हमारी सोसाइटी ही अभी इस योग्य नहीं हुई कि पढ़ी-लिखी लड़कियों को अपने में समा सके," सरला कहती।

"होता यह है कि लड़कियाँ संतुलन-भावना को खो बैठती हैं।" रेहाना अपना मत प्रकट करती।

जो भी हो, किसी भी तरह विश्वास नहीं होता कि हमारी जैसी हमारे ही साथ की कुछ लड़कियाँ ऐसी-ऐसी भयानक करतूतें किस तरह करती हैं।"

कहने को ये जवानी की बहारें और रंगीनियाँ थीं। घरवालों से झूठ बोल-बोलकर। सारी नैतिकता को धत्ता बताकर लेकिन लड़कियों का शोषण इसमें भी कम नहीं था। हिंसा के कई रूप थे— "मेरे इंकार करने पर खुशवक़्त ने जूतों-लातों से मार-मार कर मेरा कचूमर निकाल दिया।" लड़कियों की 'न' के शायद कोई मायने नहीं होते। न तब थे और कमोबेश आज भी नहीं हैं। पढ़ी-लिखी लड़कियाँ आज भी 'न' कहने के अपने हक़ के लिए संघर्षरत हैं।

क़ुर्रतुल ऐन हैदर की कहानी-कला की यह ख़ासियत है कि वे पात्रों के मन में प्रवेश करके उसके अंतर्द्वन्द्व को उजागर करने की कोशिश करती हैं। हिन्दी में नई कहानी और उर्दू में नया अफ़साना के अंतर्गत बाद में ये प्रयोग ख़ूब किए गए लेकिन उर्दू साहित्य में इसका चलन शुरू करने का श्रेय क़ुर्रतुल ऐन हैदर को जाता है। इस कहानी में भी वे इस सारी स्थिति के कारणों की पड़ताल करते हुए दो-तीन तरह के मतों पर विचार करती हैं—

"एक विचारधारा थी कि वही लड़कियाँ आवारा होती हैं जिनके पास सूझ-बूझ बहुत कम होती है। मानव-मस्तिष्क कभी भी अपनी बर्बादी की ओर जान-बूझकर क़दम नहीं उठाएगा लेकिन मैंने तो अच्छी-ख़ासी समझदार, तेज़-तर्रार लड़कियों को आवारागर्दी करते देखा था। दूसरी विचारधारा थी कि रुपये-पैसे, ऐशो-आराम का जीवन, क़ीमती भेंटों का लालच, रोमांस की खोज, साहसिक कार्य करने की अभिलाषा या मात्र उक्ताहट या पर्दे के बंधनों के बाद स्वतन्त्रता के वातावरण में प्रवेश कर पुराने बंधनों से विद्रोह, इस आवारगी के कुछ कारण हैं। ये सब बातें अवश्य होंगी अन्यथा और क्या कारण हो सकता है?"

इतना ही नहीं, इस एक ही कहानी में वे इन दिनों का विस्तार विभाजन तक करती हैं। विभाजन का समय सभी वर्गों की स्त्रियों के लिए दिल दहला देने वाला अनुभव था। "मैं जीवन के इस अचानक परिवर्तन से इतनी हक्की-बक्की थी कि मेरी समझ में न आता था कि क्या हो गया! कहाँ अविभाज्य भारत की वह भरपूर, दिलचस्प, रंगारंग दुनिया, कहाँ सन् 48 के लाहौर का वह छोटा और अँधेरा मकान! देश त्याग! अल्लाहो-अकबर मैंने कैसे-कैसे दिल हिला देने वाले दिन देखे हैं।" इन सब विवरणों से उस परिवेश और माहौल की एक तस्वीर बनती है। बँटवारे के समय हुई हिंसा ने स्त्रियों की चेतना पर अजब दहशत का रंग भर दिया था। जो किसी तरह बच कर सरहद पार कर पाईं उनकी मुश्किलें भी कम न हुईं। विभाजन के कारण बहुतों की पढ़ाई बीच में छूट गई। इंद्रप्रस्थ कॉलेज ने भी उस वक़्त ऐसी महिलाओं के लिए विशेष कक्षाओं का इंतज़ाम किया जिससे वे अपनी डिग्री पूरी कर सकें।

दरअसल, ये सभी चित्र या औरतों के जीने के तरीक़े को लेकर जो द्वन्द्व उनके कथा साहित्य में है वह केवल शिक्षा संस्थाओं के अनुभव से ही नहीं आता। उनका परिवार ख़ास तौर पर तरक़्क़ीपसन्द परिवार था, केवल विचारों से ही नहीं व्यवहार से भी। परिवार की सभी महिलाएँ पूरी आज़ादख़याली से जीने का अधिकार रखती थीं। उनके माता-पिता और बुआ, प्रतिष्ठित व सक्रिय लेखक थे। लिखने की विरासत उन्हें अपने परिवार से ही मिली। उन्होंने अंग्रेज़ी और उर्दू दोनों ही भाषाओं में लिखा। वे अंग्रेज़ी की पत्रकार थीं जिन्होंने 'इंप्रिंट' तथा 'इलस्ट्रेटेड वीकली ऑफ़ इंडिया' जैसी पत्रिकाओं में लेखन और सम्पादन का दायित्व सम्भाला। यह काम वे अपनी आजीविका के लिए करती रहीं और उर्दू में लेखन अपनी साहित्यिक-भाषिक निष्ठा के निर्वाह के लिए।

भारत की साझी सांस्कृतिक विरासत में उनका अटूट विश्वास और हर हालत में मानवीय मूल्यों को बड़ा रखने की कोशिश उन्हें बड़ा लेखक बनाती है। उर्दू साहित्य में उनका नाम मंटो, इस्मत, राजिन्दर सिंह बेदी और कृष्ण चन्दर जैसे बड़े रचनाकारों के साथ लिया जाता है। हालाँकि उनका लेखन कई अर्थों में इनसे बहुत अलहदा रहा। जिस परिवार और शिक्षा से उनका सम्बन्ध रहा उसने उनके स्वतन्त्रचेता मानस का निर्माण किया। उन्होंने बारह उपन्यास लिखे और कई कहानियाँ। इन सबमें 1959 में प्रकाशित 'आग का दरिया' ने भारतीय कथा साहित्य

में उनकी उपस्थिति को स्थायी महत्व प्रदान किया। इसके अतिरिक्त 'मेरे भी सनमख़ाने', 'सफ़ीना-ए-ग़म-ए-दिल' आदि विशेष प्रसिद्ध हुए।

उर्दू साहित्य में उनका नाम अक्सर इस्मत चुग़ताई के साथ लिया जाता है। दोनों समकालीन लेखिकाएँ थीं। साहित्यिक हल्क़ों में इस्मत, 'इस्मत आपा' नाम से मशहूर हुईं और क़ुर्रतुल ऐन हैदर 'ऐनी आपा' के नाम से। इस्मत बड़ी थीं। 1938 में वे अलीगढ़ में क़ुर्रतुल ऐन हैदर की चचेरी बहनों के साथ पढ़ती थीं। दोनों की परवरिश अलग-अलग माहौल में हुई। इस्मत की कहानियों में परदे के पीछे, 'ज़नाना' के भीतर स्त्रियों की रंगीन-बदरंग ज़िन्दगी को 'बेगमाती ज़ुबान' में बेपर्दा किया गया है। 'लिहाफ़' जैसी कहानी ने कुलीन समाज की पोल खोल दी थी। मज़ाहिया अंदाज़ में लिखी गईं उनकी कहानियाँ स्त्री के प्रति समाज के रवैये को लेकर कुछ ज़रूरी सवाल उठाती हैं। वे स्त्री की लाचारी की कहानियाँ भी हैं। मंटो के साथ इस्मत ने उर्दू साहित्य में एक अलग ढंग से प्रगतिशील लेखन की ज़मीन तैयार की। क़ुर्रतुल ऐन हैदर के यहाँ उसके बाद की, ज़्यादातर पढ़ी-लिखी लड़कियों की कशमकश है। वर्जनाओं और मुक्ति के बीच का अस्मिताबोध, नैतिकता के दबाव, इतिहास की करवटें और फ़लसफ़े—इन सबके ब्योरों से बनता साहित्य क़ुर्रतुल ऐन हैदर की पहचान है। दोनों क़रीब भी हैं और अलग भी, लेकिन सबसे मज़ेदार सच यह है कि दोनों एक-दूसरे से मुतासिर होते हुए भी एक-दूसरे को आड़े हाथों लेने से नहीं चूकतीं। इस्मत चुग़ताई ने क़ुर्रतुल ऐन हैदर पर 'पॉम-पॉम डार्लिंग' शीर्षक से लेख लिखा और उनके लेखन में फ़ैशनपरस्त मध्यवर्गीय मानसिकता को उनकी सीमा बताया जो उन्हें नई ज़मीन गोड़ने से रोकती है। उन्होंने कड़े शब्दों में क़ुर्रतुल की साहित्यिक सम्भावनाओं के क्षय हो जाने को लेकर चिन्ता जताई। क़ुर्रतुल ऐन हैदर के लेखन में जिस नएपन की बात की जा रही थी उन्होंने उसके प्रति कोई आश्वस्ति प्रकट नहीं की बल्कि 'नए बच्चे न जाने ख़ुद को क्या समझते हैं' के अंदाज़ में काफ़ी सख़्त लेख लिखा। ग़नीमत कि क़ुर्रतुल ऐन हैदर ने उस पर कोई तीखी प्रतिक्रिया नहीं दी। हाँ, इस्मत आपा के गुज़र जाने पर उन्होंने जो श्रद्धांजलि पूर्ण लेख लिखा उसका शीर्षक दिया 'लेडी चंगेज़ ख़ाँ।' उसमें वे लिखती हैं– "कभी-कभी मैं उनको लेडी चंगेज़ ख़ाँ पुकारती थी क्योंकि वह उर्दू फ़िक्शन की ऐसी चुग़तई सवार और तीरन्दाज़ थीं जिनका निशाना कभी नहीं चूकता था।" इसके आगे वे लिखती हैं, "उनकी कहानियों में जो बेसाख़्तापन और भाषा का चटख़ारा मिलता है, वह उनकी और उनके ख़ानदान की दूसरी औरतों की भाषा थी। इस्मत आपा एक मुहब्बत करने वाली, मुँहफट, साफ़गो, ढीठ क़िस्म की खुशमिज़ाज औरत थीं।"

यह दो बड़ी हस्तियों की परस्पर नोक-झोंक थी जो साहित्यिक माहौल को दिलचस्प बनाती है। बहरहाल, यह लेख क़ुर्रतुल ऐन हैदर के साहित्यिक अवदान की कोई गम्भीर समीक्षा नहीं, इंद्रप्रस्थ कॉलेज की अपनी 'सीनियर' को याद करने का बहाना भर है। बाक़ी फिर कभी... ❑

भारतीय स्त्रीवादी चिन्तन...

पृष्ठ 7 से आगे...

इस्लाम' का गठन 1 मार्च, 1914 को अलीगढ़ में अलीगढ़ गर्ल्स स्कूल के लिए एक छात्रावास के निर्माण के अवसर पर आयोजित समारोह में हुआ। सर सैय्यद अहमद ख़ान के समय से अलीगढ़ मुसलमानों में नवजागृति का केन्द्र बन गया था। अंजुमन का मुख्य सरोकार भारतीय मुसलमान स्त्रियों में शिक्षा का प्रचार करना था। इस संगठन से शिक्षित अभिजात्य भारतीय मुसलमान परिवारों की स्त्रियाँ जुड़ी हुई थीं। भोपाल की बेगम ने इस सम्मेलन और संगठन में महत्वपूर्ण काम किया। बेगम ने मुसलमान स्त्रियों की शिक्षा की आवश्यकता पर यह कहते हुए ज़ोर दिया कि बिना शिक्षा के मुसलमान लड़कियाँ यह नहीं जान पाएँगी कि इस्लाम धर्म में उनको क्या अधिकार प्राप्त हैं और साथ ही उनकी अशिक्षा से समुदाय की प्रगति भी बाधित होगी। 'अंजुमन-ए-ख़वातीन-ए-इस्लाम' के गठन के मौक़े पर अध्यक्ष पद से भाषण देते हुए बेगम ने कहा, "सारे समुदाय का विकास दाँव पर लगा हुआ है, अपने पुरुषों के सहयोग के बिना वे (मुसलमान स्त्रियाँ) कुछ नहीं कर सकतीं, लेकिन पुरुष भी बहुत कुछ नहीं कर सकते जब तक कि वे स्वयं स्त्रियों को शिक्षित करने का बीड़ा न उठा लें।"

इस प्रकार अंजुमन का उद्देश्य स्त्रियों के जीवन में परिवर्तन लाना था ताकि वे अपनी परम्पराओं की बेहतर वाहिका बन सकें। हिन्दू सुधारवादी नज़रिए का ज़ोर भी इसी बात पर था। परम्परा और भारतीय संस्कृति का पुरातन रूप उन्हें औपनिवेशिक दासता के ख़िलाफ़ पनपे राष्ट्रवाद से जोड़ रहा था। जिन स्त्रियों के बारे में चिन्ता की जा रही थी वे सामान्य स्त्रियाँ नहीं थीं, अभिजात्य, कुलीन, मध्यवर्गीय स्त्रियों के जीवन की यह दुर्दशा थी।

अंजुमन, सन् 1917 में गठित 'वीमेन इंडिया एसोसिएशन' और 'नेशनल काउंसिल ऑफ़ वीमेन इन इंडिया' (एनसीडब्ल्यूआई) की कार्रवाइयों में इस चिन्ता को देखा जा सकता है। 'वीमेन इंडिया एसोसिएशन' अखिल भारतीय स्तर पर महिलाओं को एकजुट करने का प्रथम प्रयास था। इसके संस्थापक सदस्यों में एनी बेसेन्ट, मार्गेरेट कज़िन और डोरोथी जीवराजदास शामिल थीं लेकिन इन सब संस्थाओं ने नई स्त्री के विकास का जो मॉडल रखा, वह 'पुरानी/परम्परित भारतीय स्त्री' के पदचिह्नों पर चलती हुई कुछ नए गुणों का समावेश कर बनी 'भारतीय महिला' का मॉडल था, जो 19वीं शती में निर्मित भारतीय महिला के मॉडल से बहुत भिन्न नहीं था। गाँधीजी के नेतृत्व में कांग्रेस, ख़िलाफ़त और क्रान्तिकारी दलों द्वारा आधुनिक भारतीय स्त्री का आदर्श प्रस्तुत किया जा रहा था। स्त्रियों की एक स्वतन्त्र आधुनिक पहलक़दमी चेतना के स्तर पर अभी अपेक्षित थी।

इन सब हलचलों की झलक उस समय के स्त्री-लेखन और चेतना में देखी जा सकती है। महिलाओं की पत्रिका 'स्त्री दर्पण' (1910-1929) की सम्पादिका रामेश्वरी नेहरू ने इंग्लैंड में एक महिला कॉलेज में व्याख्यान देते हुए यह बताया कि भारतीय महिलाओं और पश्चिम की महिलाओं के आंदोलन में अंतर है। इस तरह की व्याख्या का मुख्य कारण है कि स्त्री की एक सांस्कृतिक पहचान भारतीय स्तर पर निर्मित की जा रही थी जिसमें यह कोशिश थी कि यह पहचान ब्रिटिश उपनिवेशवादी मालिकों की सांस्कृतिक पहचान से अलग दिखाई दे। भारतीय स्त्रीवादी चिन्तन का यह प्रस्थान बिन्दु कहा जा सकता है। ❑